



द्रव्यसंग्रह

- नेमिचंद्र-सिद्धांतचक्रवर्ती

Index

गाथा / सूत्र	विषय
मंगलाचरण	
01)	मंगलाचरण
छह-द्रव्य अधिकार	
02)	जीव द्रव्य के नव अधिकार
03)	जीवत्व का लक्षण
04)	उपयोग का वर्णन
05)	ज्ञानोपयोग के भेद
06)	उभयनय से उपयोग का लक्षण
07)	जीव अमूर्तिक है
08)	जीव कर्ता है
09)	जीव भोक्ता है
10)	जीव स्वदेह बराबर है
11)	जीव संसारी है
12)	चौदह जीव समास
13)	उभयनय से संसारी जीव का स्वरूप
14)	सिद्ध और ऊर्ध्वगमन का स्वरूप
15)	अजीव द्रव्य और उनमें मूर्तिक-अमूर्तिक द्रव्य
16)	पुद्गल द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्यायें
17)	धर्म द्रव्य का स्वरूप
18)	अधर्म द्रव्य का स्वरूप
19)	आकाश द्रव्य का स्वरूप
20)	लोकाकाश-अलोकाकाश का स्वरूप
21)	कालद्रव्य का स्वरूप
22)	काल द्रव्य की संख्या
23)	द्रव्य और अस्तिकाय के भेद
24)	अस्तिकाय का स्वरूप और नाम की सार्थकता
25)	द्रव्यों की प्रदेश संख्या
26)	पुद्गल का परमाणु अस्तिकाय है
27)	प्रदेश का लक्षण और उसकी योग्यता
सात-तत्त्व अधिकार	
28)	सात तत्त्व
29)	भावाप्तव और द्रव्याप्तव

30)	भावास्रव के भेद
31)	द्रव्यास्रव का स्वरूप और भेद
32)	भावबंध और द्रव्यबंध
33)	बन्ध के भेद और कारण
34)	भावसंवर और द्रव्यसंवर का स्वरूप
35)	भावसंवर के भेद
36)	निर्जरा का स्वरूप
37)	मोक्ष का स्वरूप और उसके भेद
38)	पुण्य और पाप पदार्थ

मोक्ष-अधिकार

39)	व्यवहार और निश्चय मोक्ष मार्ग
40)	आत्मा ही निश्चयनय से मोक्ष मार्ग है
41)	व्यवहार सम्यग्दर्शन
42)	सम्यग्ज्ञान का स्वरूप
43)	दर्शनोपयोग का स्वरूप
44)	दर्शन और ज्ञान का क्रम
45)	व्यवहार सम्यक्चारित्र और उसके भेद
46)	निश्चयचारित्र का लक्षण
47)	ध्यानाभ्यास की प्रेरणा
48)	ध्यान का उपाय
49)	ध्यान के योग्य मंत्र
50)	अरिहंत परमेष्ठी का लक्षण
51)	सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप
52)	आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप
53)	उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप
54)	साधु परमेष्ठी का स्वरूप
55)	निश्चयध्यान का लक्षण
56)	परमध्यान का लक्षण
57)	ध्यान का कारण
58)	ग्रन्थकर्ता का लघुता प्रकाशन

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नमः !!

श्रीमद्-भगवत्त्रैमिचंद्र-प्रणीत

श्री

द्रव्यसंग्रह

मूल सौरसेणी प्राकृत गाथा

आभार : पं जयचंदजी छाबडा, आ. ज्ञानसागर, क्षु. मनोहर वर्णी, पं हुकमचंद भारिल्ल, आ. ज्ञानमती

!! नमः श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥१॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥२॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥३॥

अर्थ : बिन्दुसहित ॐकार को योगीजन सर्वदा ध्याते हैं, मनोवाँछित वस्तु को देने वाले और मोक्ष को देने वाले ॐकार को बार बार नमस्कार हो । निरंतर दिव्य-ध्वनि-रूपी मेघ-समूह संसार के समस्त पापरूपी मैल को धोनेवाली है मुनियों द्वारा उपासित भवसागर से तिरानेवाली ऐसी जिनवाणी हमारे पापों को नष्ट करो । जिसने अज्ञान-रूपी अंधेरे से अंधे हुये जीवों के नेत्र ज्ञानरूपी अंजन की सलाई से खोल दिये हैं, उस श्री गुरु को नमस्कार हो । परम गुरु को नमस्कार हो, परम्परागत आचार्य गुरु को नमस्कार हो ।

॥ श्रीपरमगुरुवे नमः, परम्पराचार्यगुरुवे नमः ॥

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं,
पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री-द्रव्यसंग्रह नामधेयं, अस्य मूल-ग्रन्थकर्तारः श्री-सर्वज्ञ-देवास्तदुत्तर-ग्रन्थ-कर्तारः श्री-
गणधर-देवाः प्रति-गणधर-देवास्तेषां वचनानुसार-मासाद्य आचार्य श्री-नेमिचंद्र-देव विरचितं ॥

(समस्त पापों का नाश करनेवाला, कल्याणों का बढ़ानेवाला, धर्म से सम्बन्ध रखनेवाला, भव्यजीवों के मन को प्रतिबुद्ध-सचेत करनेवाला यह शास्त्र द्रव्यसंग्रह नाम का है, मूल-ग्रन्थ के रचयिता सर्वज्ञ-देव हैं, उनके बाद ग्रन्थ

॥ श्रोतारः सावधानतया शृणवन्तु ॥

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

मंगलाचरण

+ मंगलाचरण -

जीवमजीवं दव्वं, जिणवरवसहेण जेण णिद्धं
देविंदविंदवंदं, वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥१॥

अन्वयार्थ : जिनवर में प्रधान ऐसे जिन तीर्थंकर देव ने जीव और अजीव द्रव्य को कहा है, देवेन्द्रों के समूह से वन्दना योग्य ऐसे उन भगवान को नित्य ही सिर झुकाकर मैं नमस्कार करता हूँ ।

छह-द्रव्य अधिकार

+ जीव द्रव्य के नव अधिकार -

**जीवो उवओगमओ, अमुत्तिकत्ता सदेहपरिमाणो
भोक्ता संसारत्थो, सिद्धो सो विस्ससोड्डुगई ॥२॥**

अन्वयार्थ : प्रत्येक प्राणी जीव है, उपयोगमयी है, अमूर्तिक है, कर्ता है, स्वदेह परिमाण रहने वाला है, भोक्ता है, संसारी है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करने वाला है । ये जीव के नव विशेष लक्षण हैं ।

+ जीवत्व का लक्षण -

**तिक्काले चटुपाणा, इंदिय बलमाउ आणपाणो य
ववहारा सो जीवो, णिच्चयणयदोदु चेदणाजस्स ॥३॥**

अन्वयार्थ : जिसके व्यवहारनय से तीनों कालों में इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये चार प्राण हैं और निश्चयनय से चेतना प्राण है, वह जीव कहलाता है ।

+ उपयोग का वर्णन -

**उवओगो दुवियप्पो, दंसण णाणं च दंसणं चटुधा
चक्खु अचक्खू ओही, दंसणमध केवलं णेयं ॥४॥**

अन्वयार्थ : उपयोग दो प्रकार का होता है-दर्शनोपयोग और ज्ञानोपयोग। उनमें से दर्शन के चार भेद हैं-चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन ।

+ ज्ञानोपयोग के भेद -

**णाणं अट्टवियप्पं, मदिसुदओही अणाणणाणाणी
मणपज्जयकेवलमवि, पच्चक्ख परोक्खभेयं च ॥५॥**

अन्वयार्थ : मति-श्रुत-अवधि ये तीन ज्ञान मिथ्या और सम्यक् दोनों रूप होने से ऐसे छह भेद रूप होते हैं तथा मनः पर्यय और केवलज्ञान के मिलाने से ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का होता है । इनके प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेद होते हैं ।

+ उभयनय से उपयोग का लक्षण -

**अट्टचटुणाण दंसण, सामण्णं जीवलक्खणं भणियं
ववहारा सुद्धणया, सुद्धं पुण दंसणं णाणं ॥६॥**

अन्वयार्थ : आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन व्यवहार नय से यह सामान्य जीव का लक्षण कहा गया है, पुनः शुद्धनय से शुद्ध ज्ञान-दर्शन ही जीव का लक्षण है ।

+ जीव अमूर्तिक है -

**वण्ण रस पंच गंधा, दो फासा अट्टणिच्चया जीवे
णो संति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्ति बंधादो ॥७॥**

अन्वयार्थ : पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्श निश्चयनय से ये जीव में नहीं है अतः यह अमूर्तिक है और कर्म बंध के होने से यह व्यवहारनय से मूर्तिक है ।

+ जीव कर्ता है -

**पुग्गलकम्मादीणं, कत्ता ववहारदो दु णिच्चयदो
चेदणकम्माणदा, सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥८॥**

अन्वयार्थ : जीव व्यवहारनय से पुद्गलकर्मादि का कर्ता है किन्तु निश्चयनय से चेतन भावों का कर्ता है और शुद्धनय से शुद्ध भावों का कर्ता है । यहाँ निश्चयनय से अशुद्ध निश्चयनय लेना है और चेतन भावों से जीव के रागादि भावों को लेना है, क्योंकि आगे शुद्ध नय से अपने ही शुद्ध भावों का कर्ता कहा है ।

+ जीव भोक्ता है -

**ववहारा सुहदुक्खं, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि
आदा णिच्चयणयदो, चेदणभावं खु आदस्स ॥९॥**

अन्वयार्थ : यह आत्मा व्यवहारनय से पुद्गलमय कर्मों के फलस्वरूप ऐसे सुख और दुःख को भोगता है और निश्चयनय से आत्मा के चेतन भाव-शुद्ध ज्ञानदर्शन को भोगता है-अनुभव करता है ।

+ जीव स्वदेह बराबर है -

**अणुगुरुदेह-पमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा
असमुहदो ववहारा, णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥१०॥**

अन्वयार्थ : यह चेतन जीव समुद्घात अवस्था के सिवाय हमेशा व्यवहारनय की अपेक्षा संकोच और विस्तार के कारण छोटे या बड़े अपने शरीर प्रमाण रहता है और निश्चयनय से असंख्यात प्रदेश वाला है ।

+ जीव संसारी है -

**पुढविजलतेउवाऊ, वणप्फदी विविहथावरेइंदी
विगतिगचदुपंचक्खा, तसजीवा होंति संखादी ॥११॥**

अन्वयार्थ : पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच प्रकार के स्थावर एकेन्द्रिय जीव होते हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ये त्रस जीव हैं जो कि शंख, चिवटी, भ्रमर, मनुष्य आदि हैं।

+ चौदह जीव समास -

**समणा अमणा णेया, पंचिन्द्रिय णिम्मणा परे सव्वे
बादरसुहुमेइंदी, सव्वे पज्जत्त इदरा य ॥१२॥**

अन्वयार्थ : पंचेन्द्रिय जीव संज्ञी और असंज्ञी हैं तथा शेष सभी जीव असंज्ञी ही होते हैं ऐसा जानना चाहिए। बादर और सूक्ष्म ऐसे एकेन्द्रिय के दो भेद हैं। ये सभी पर्याप्तक और अपर्याप्तक होते हैं।

+ उभयनय से संसारी जीव का स्वरूप -

**मग्गणगुणठाणेहय, चउदसिंहह-वंतितहअसुद्धणया
विण्णेया संसारी, सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥१३॥**

अन्वयार्थ : अशुद्धनय की अपेक्षा चौदह मार्गणा, चौदह गुणस्थान और चौदह जीव समासों के द्वारा ये जीव संसारी हैं और शुद्धनय से सभी जीव शुद्ध ही हैं, ऐसा जानना चाहिए।

+ सिद्ध और ऊर्ध्वगमन का स्वरूप -

**णिक्कम्मा अट्ठगुणा, किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा
लोयग्गठिदा णिच्चा, उप्पादवयेहिं संजुत्ता ॥१४॥**

अन्वयार्थ : आठों कर्मों से रहित, आठ गुणों से सहित और अंतिम शरीर से किंचित कम ये सिद्धजीव होते हैं। नित्य और उत्पाद व्यय से सहित ये सिद्ध भगवान लोक के अग्र भाग पर विराजमान हैं।

+ अजीव द्रव्य और उनमें मूर्तिक-अमूर्तिक द्रव्य -

**अज्जीवो पुण णेओ, पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं
कालो पुग्गल मुत्तो, रूवादिगुणो अमुत्ति सेसादु ॥१५॥**

अन्वयार्थ : पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये अजीव द्रव्य पाँच प्रकार का है ऐसा जानो। इनमें से पुद्गल द्रव्य मूर्तिक है क्योंकि वह रूप, रस, गंध और स्पर्श गुण वाला है, बाकी शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं।

+ पुद्गल द्रव्य की विभाव व्यंजन पर्यायें -

सद्धो बंधो सुहमो, थूलो संठाणभेदतमछाया
उज्जोदादवसहिया, पुगगल दव्वस्स पज्जाया ॥१६॥

अन्वयार्थ : शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व, भेद-खंड, अंधकार, छाया, उद्योत और आतप ये सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं । अर्थात् इन्हें विभाव व्यंजन पर्याय कहते हैं ।

+ धर्म द्रव्य का स्वरूप -

गइपरिणयाण धम्मो, पुगगलजीवाण गमणसहयारी
तोयं जह मच्छाणं, अच्छंता णेव सो णेई ॥१७॥

अन्वयार्थ : गति क्रिया में परिणत हुये पुद्गल और जीवों को गमन करने में जो सहकारी है वह धर्म द्रव्य है जैसे जल मछलियों को गमन में सहकारी है किन्तु वह नहीं चलते हुये को नहीं ले जाता है । अर्थात् जैसे जल प्रेरक नहीं है वैसे ही यह द्रव्य प्रेरक नहीं है ।

+ अधर्म द्रव्य का स्वरूप -

ठाणजुदाण अधम्मो, पुगगलजीवाण ठाणसहयारी
छाया जह पहियाणं, गच्छंता णेव सो धरई ॥१८॥

अन्वयार्थ : ठहरते हुए पुद्गल और जीवों को ठहरने में जो सहकारी है वह अधर्म द्रव्य है जैसे छाया पथिकों को ठहरने में सहायक है किन्तु यह द्रव्य चलते हुए को रोकता नहीं है ।

+ आकाश द्रव्य का स्वरूप -

अवगासदाण जोग्गं, जीवादीणं वियाण आयासं
जेण्हं लोगागासं, अल्लोगागासमिदि दुविहं ॥१९॥

अन्वयार्थ : जीव-पुद्गल धर्म-अधर्म और काल इन द्रव्यों को अवकाश देने में योग्य आकाश द्रव्य है ऐसा तुम जानो । जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित इस आकाश द्रव्य के लोकाकाश और अलोकाकाश ऐसे दो भेद होते हैं ।

+ लोकाकाश-अलोकाकाश का स्वरूप -

धम्माधम्मा कालो, पुगगलजीवा य संति जावदिये
आयासे सो लोगो, तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥२०॥

अन्वयार्थ : धर्म-अधर्म काल जीव और पुद्गल ये पाँच द्रव्य जितने आकाश में रहते हैं वह लोकाकाश है और उससे परे चारों तरफ अलोकाकाश है ।

+ कालद्रव्य का स्वरूप -

**दव्वपरिवट्टरूवो, जो सो कालो हवेइ ववहारो
परिणामादीलक्खो, वट्टणलक्खो व परमट्टो ॥२१॥**

अन्वयार्थ : काल द्रव्य के दो भेद हैं-व्यवहार और निश्चय। जो द्रव्यों में परिवर्तन कराने वाला है और परिणाम क्रिया आदि लक्षण वाला है वह व्यवहारकाल है और वर्तना लक्षण वाला परमार्थ काल-निश्चयकाल है ।

+ काल द्रव्य की संख्या -

**लोयायासपदेसे, इक्केक्के जे ठिया हु इक्केक्का
रयणाणं रासीमिव, ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥२२॥**

अन्वयार्थ : लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालाणु स्थित हैं जो कि रत्नों की राशि के समान पृथक्-पृथक् रहते हैं । वे काल द्रव्य असंख्यात हैं । अर्थात् लोकाकाश के असंख्यात प्रदेशों पर अलग-अलग एक-एक काल द्रव्य स्थित हैं इसीलिए वे काल द्रव्य असंख्यात हैं ।

+ द्रव्य और अस्तिकाय के भेद -

**एवं छब्भेयमिदं, जीवाजीवप्पभेददो दव्वं
उत्तं कालविजुत्तं, णायव्वा पंच अत्थिकाया दु ॥२३॥**

अन्वयार्थ : इस प्रकार से जीव और अजीवों के प्रभेद से द्रव्य के छह भेद हो जाते हैं । इनमें से काल द्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं, ऐसा जानना चाहिए ।

+ अस्तिकाय का स्वरूप और नाम की सार्थकता -

**संति जदो तेणेदे, अत्थीति भणंति जिणवरा जम्हा
काया इव बहुदेसा, तम्हा काया या अत्थिकाया य ॥२४॥**

अन्वयार्थ : 'संति' अर्थात् विद्यमान हैं इसीलिए ये 'अस्ति' हैं । इस प्रकार जिनेन्द्रदेव कहते हैं और जिस हेतु से ये काय के समान बहुत प्रदेशी हैं उसी हेतु से ये 'काय' इस नाम को प्राप्त हैं । अतः ये 'अस्तिकाय' इस सार्थक नाम वाले हैं ।

+ द्रव्यों की प्रदेश संख्या -

होति असंखा जीवे, धम्माधम्मे अणंत आयासे
मुत्ते तिविह पदेसा, कालस्सेगोणतेण सो काओ ॥२५॥

अन्वयार्थ : एक जीव में, धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य में असंख्यात प्रदेश होते हैं, आकाश द्रव्य में अनन्त प्रदेश हैं, मूर्तिक-पुद्गल द्रव्य में तीन प्रकार के-संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं तथा काल द्रव्य का एक प्रदेश होता है इसीलिए वह काल द्रव्य 'काय' नहीं होता है ।

+ पुद्गल का परमाणु अस्तिकाय है -

एयपदेसो वि अणू, णाणाखंधप्पदेसदो होदि
बहुदेसो उवयारा, तेण य काओ भणंति सव्वण्हू ॥२६॥

अन्वयार्थ : एक प्रदेशी भी अणु नानाप्रदेश रूप का कारण होने से वह उपचार से बहुप्रदेशी माना है । इसीलिए सर्वज्ञदेव उसे 'काय' कहते हैं ।

+ प्रदेश का लक्षण और उसकी योग्यता -

जावदियं आयासं, अविभागी पुग्गलाणु वट्ठब्धं
तं खु पदेसं जाणे, सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥२७॥

अन्वयार्थ : जितना मात्र आकाश एक अविभागी पुद्गल के परमाणु से रुका हुआ है उतने मात्र को तुम प्रदेश जानो। वह प्रदेश भी सभी परमाणुओं को ठहराने में समर्थ हो सकता है ।

सात-तत्त्व अधिकार

+ सात तत्त्व -

आसव बंधणसंवर-णिज्जरमोक्खा सपुण्णपावा जे
जीवाजीव-विसेसा, तेवि समासेण पभणामो ॥२८॥

अन्वयार्थ : जीव और अजीव के विशेष भेद रूप आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष होते हैं। ये पुण्य और पाप से सहित भी हैं । इन सबको हम संक्षेप से कहते हैं ।

+ भावास्रव और द्रव्यास्रव -

आसवदि जेण कम्मं, परिणामेणप्पणो स विण्णेयो
भावासवो जिणुत्तो, कम्मासवणं परो होदि ॥२९॥

अन्वयार्थ : आत्मा के जिन परिणामों से कर्म आता है उस परिणाम को जिनेन्द्र द्वारा कहा गया भावास्रव नाम से जानना चाहिये । इससे भिन्न कर्मों का आना द्रव्यास्रव होता है ।

+ भावास्रव के भेद -

मिच्छताविरदिपमाद - जोगकोहादओथ विण्णेया
पण पण पण दह तिय चट्ठु, कमसो भेदा दु पुव्वस्स ॥३०॥

अन्वयार्थ : पाँच मिथ्यात्व, पाँच अविरति, पन्द्रह प्रमाद, तीन योग और चार कषाय इस प्रकार क्रम से भावास्रव के बत्तीस भेद जानना चाहिये ।

+ द्रव्यास्रव का स्वरूप और भेद -

णाणावरणादीणं, जोगं जं पुगलं समासवदि
दव्वासवो च णेओ, अणेयभेयो जिणक्खादो ॥३१॥

अन्वयार्थ : ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्मों के योग्य जो पुद्गल वर्गणाओं का आस्रव होता है उसे द्रव्यास्रव जानना चाहिये। उसके जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित अनेक भेद होते हैं अर्थात् कर्म के ज्ञानावरण-दर्शनावरण आदि आठ भेद और मति ज्ञानावरण आदि एक सौ अड़तालिस अथवा असंख्यात लोक प्रमाण भी भेद होते हैं ।

+ भावबंध और द्रव्यबंध -

बज्झदि कम्मं जेण दु, चेदणभावेण भावबंधो सो
कम्मदपदेसाणं अण्णोणपवेसणं इदरो ॥३२॥

अन्वयार्थ : आत्मा के जिन भावों से कर्म बंधता है वह आत्मा का भाव ही भाव बंध कहलाता है, कर्म और आत्मा के प्रदेशों का परस्पर में प्रवेश हो जाना / मिल जाना द्रव्य बंध कहलाता है ।

+ बन्ध के भेद और कारण -

पयडिट्ठिदिअणुभाग-प्पदेसभेदा दु चट्ठुविधो बंधो
जोगा पयडिपदेसा, ठिदि अणुभागा कसायदो होंति ॥३३॥

अन्वयार्थ : प्रकृति बन्ध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बन्ध और प्रदेश बन्ध इन भेदों से बन्ध चार प्रकार का है । इनमें से प्रकृति और प्रदेश बन्ध योग के निमित्त से होते हैं तथा स्थिति और अनुभाग बन्ध कषाय से होते हैं ।

+ भावसंवर और द्रव्यसंवर का स्वरूप -

**चेदणपरिणामो जो, कम्मस्सासवणिरोहणे हेऊ
सो भावसंवरो खलु, दव्वासवरोहणे अण्णो ॥३४॥**

अन्वयार्थ : आत्मा का जो परिणाम कर्मों के आस्रव के रोकने में कारण है वह परिणाम ही भावसंवर है और द्रव्यास्रव के रोकने में जो कारण है वह द्रव्यसंवर कहलाता है ।

+ भावसंवर के भेद -

**वदसमिदी गुत्तीओ, धम्माणुपिहा परीसहजओ य
चारित्तं बहुभेयं, णायव्वा भावसंवरविसेसा ॥३५॥**

अन्वयार्थ : व्रत, समिति, गुप्ति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और बहुत प्रकार के चारित्र ये सब भावसंवर के विशेष भेद जानने चाहिये ।

+ निर्जरा का स्वरूप -

**जह कालेण तवेण य, भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण
भावेण सडदि णेया, तस्सडणं चेदि णिज्जरा दुविहा ॥३६॥**

अन्वयार्थ : यथाकाल / काल पूर्ण होने पर और तप के द्वारा जिनका फल भोग लिया है ऐसे पुद्गल कर्म जिन भावों से झड़ जाते हैं उन भावों को भाव निर्जरा जानना चाहिये और पुद्गल कर्मों का झड़ जाना ही द्रव्य निर्जरा है ऐसे निर्जरा के भी दो भेद हैं ।

+ मोक्ष का स्वरूप और उसके भेद -

**सव्वस्स कम्मणो जो, खयहेट्ठु अप्पणो हु परिणामो
णेओ स भावमोक्खो, दव्वविमोक्खो य कम्मपुधभावो ॥३७॥**

अन्वयार्थ : आत्मा का जो परिणाम सभी कर्मों के क्षय में हेतु है, उस परिणाम को ही भाव मोक्ष जानना चाहिये और आत्मा से कर्मों का पृथक् हो जाना ही द्रव्य मोक्ष कहलाता है ।

+ पुण्य और पाप पदार्थ -

सुह असुह भावजुत्ता, पुण्णं पावं हवन्ति खलु जीवा
सादं सुहउणाणं, गोदं पुण्णं पराणि पावं च ॥३८॥

अन्वयार्थ : शुभ और अशुभ भावों सहित जीव नियम से पुण्यरूप और पापरूप होते हैं। साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र ये पुण्यरूप हैं, इनसे भिन्न शेष कर्म पापरूप होते हैं।

मोक्ष-अधिकार

+ व्यवहार और निश्चय मोक्ष मार्ग -

सम्मदंसण णाणं, चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे
ववहारा णिच्चयदो, तत्तियमइयो णिओअप्पा ॥३९॥

अन्वयार्थ : सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र व्यवहारनय से ये मोक्ष के कारण हैं और निश्चयनय से इन रत्नत्रय से परिणत हुई अपनी आत्मा ही मोक्ष का कारण है, ऐसा तुम जानो।

+ आत्मा ही निश्चयनय से मोक्ष मार्ग है -

रयणत्तयं ण वट्ठइ, अप्पाणं मुयत्तु अण्णदवियम्हि
तम्हा तत्तियमइयो, होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा ॥४०॥

अन्वयार्थ : आत्मा को छोड़कर रत्नत्रय अन्य द्रव्यों में नहीं रहता है, इसीलिए वह रत्नत्रयमय आत्मा ही मोक्ष का कारण होता है। अर्थात् आत्मा से अतिरिक्त रत्नत्रय अन्यत्र नहीं रह सकता है इसी हेतु से यह आत्मा निश्चय मोक्षमार्ग माना गया है।

+ व्यवहार सम्यग्दर्शन -

जीवादीसद्दहणं, सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु
दुरभिणिवेसविमुक्कं, णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि ॥४१॥

अन्वयार्थ : जिसके होने पर ज्ञान दुरभिप्राय रहित समीचीन हो जाता है, ऐसा जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, जो कि आत्मा का स्वरूप ही है। अर्थात् सम्यक्त्व के होने पर ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान होता है अन्यथा नहीं।

+ सम्यग्ज्ञान का स्वरूप -

संसयविमोह विब्भम, विवज्जियं अप्परसरूवस्स
गहणं सम्मं णाणं; सायार-मणेयभेयं च ॥४२॥

अन्वयार्थ : आत्मा के स्वरूप का और पर के स्वरूप का संशय, विपरीत और अनध्यवसाय रहित ग्रहण करना-जैसे का तैसा जानना सो सम्यग्ज्ञान है जोकि साकार-सविकल्प और अनेक भेद सहित है ।

+ दर्शनोपयोग का स्वरूप -

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्ठुमायारं
अविसेसदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णए समये ॥४३॥

अन्वयार्थ : पदार्थों में विशेषता-भेद नहीं करके और उनके आकार को ग्रहण नहीं करके जो पदार्थों का सामान्य-सत्तामात्र करना है वह जैन आगम में 'दर्शन' इस नाम से कहा जाता है ।

+ दर्शन और ज्ञान का क्रम -

दंसणपुव्वं णाणं, छदुमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा
जुगवं जह्मा केवलि-णाहे जुगवं तु ते दो वि ॥४४॥

अन्वयार्थ : छद्मस्थ जीवों का ज्ञान दर्शनपूर्वक होता है क्योंकि उनके दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते हैं, किन्तु केवली भगवान् के दोनों ही उपयोग युगपत्-एक साथ होते हैं ।

+ व्यवहार सम्यक्चारित्र और उसके भेद -

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं
वदसमिदिगुत्तिरूवं, ववहारणया दु जिणभणियं ॥४५॥

अन्वयार्थ : अशुभ क्रियाओं से विरक्त होना और शुभ क्रियाओं में प्रवृत्ति करना चारित्र है जोकि व्रत, समिति और गुप्ति रूप है ऐसा तुम जानो । यह चारित्र व्यवहार नय की अपेक्षा से जिनेन्द्र देव द्वारा कथित है ।

+ निश्चयचारित्र का लक्षण -

बहिरब्भंतरकिरिया-रोहो भवकारणप्पणासट्ठं
णाणिस्स जं जिणुत्तं, तं परमं सम्मचारित्तं ॥४६॥

अन्वयार्थ : ज्ञानी जीव के संसार के कारणों का नाश करने के लिए जो बाह्य और अभ्यंतर क्रियाओं का रोकना है वह जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित परम सम्यक्चारित्र है ।

+ ध्यानाभ्यास की प्रेरणा -

**दुविहं पि मोक्खहेउं, झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा
तम्हा पयत्तचित्ता, जूयं झाणं समब्भसह ॥४७॥**

अन्वयार्थ : मुनिराज निश्चित ही ध्यान के द्वारा दोनों प्रकार के मोक्ष के कारण को प्राप्त कर लेते हैं, इसलिए प्रयत्न चित्त होते हुए तुम लोग ध्यान का सम्यक् प्रकार से अभ्यास करो ।

+ ध्यान का उपाय -

**मा मुज्झह मा रज्जह, मा दुस्सह इट्ठणिट्ठअत्थेसु
थिरमिच्छह जइ चित्तं, विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥४८॥**

अन्वयार्थ : यदि तुम अनेक प्रकार का ध्यान सिद्ध करने के लिए मन को स्थिर करना चाहते हो तो इष्ट और अनिष्ट पदार्थों में मोह मत करो, राग मत करो और द्वेष मत करो ।

+ ध्यान के योग्य मंत्र -

**पणतीस सोल छप्पण, चट्ठुगमेगं च जबह झाएह
परमेट्ठिवाचयाणं, अण्णं च गुरूवएसेण ॥४९॥**

अन्वयार्थ : परमेष्ठी के वाचक पैंतीस, सोलह, छह, पाँच, चार, दो और एक अक्षर वाले मंत्रों का तथा गुरु के उपदेश से अन्य भी मन्त्रों का जाप करो और ध्यान करो ।

+ अरिहंत परमेष्ठी का लक्षण -

**णट्ठचट्ठुघाइकम्मो, दंसणसुहणाणवीरियमइयो
सुहदेहत्यो अप्पा, सुद्धो अरिहो विचिंतिज्जो ॥५०॥**

अन्वयार्थ : जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया है, जो अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत ज्ञान और अनंत वीर्य इन चार चतुष्टय के धारक हैं, जो शुभ-परमौदारिक दिव्य शरीर में स्थित हैं, जो शुद्ध अर्थात् दोष रहित हैं ऐसे आत्मा अरहंत परमेष्ठी हैं उनका ध्यान करना चाहिए ।

+ सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप -

**णट्टकम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा
पुरुसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोय सिहरत्थो ॥५१॥**
अन्वयार्थ : जिन्होंने आठ कर्म रूपी शरीर का नाश कर दिया है, जो लोक और अलोक के जानने और देखने वाले हैं, पुरुषाकार हैं और लोक के शिखर पर स्थित हैं ऐसे आत्मा सिद्ध परमेष्ठी हैं उनका तुम सब जन ध्यान करो ।

+ आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप -

**दंसणणाणपहाणे, वीरियचारित्त-वरतवायारे
अप्पं परं च जुंजइ, सो आइरियो मुणी झेओ ॥५२॥**
अन्वयार्थ : जो साधु स्वयं पंचाचार का पालन करते हैं और शिष्यों को भी पालन कराते हैं वे आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं ।

+ उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप -

**जो रयणत्तयजुत्तो, णिच्चं धम्मोवएसणे णिरदो
सो उवझाओ अप्पा, जदिवरवसहो णमो तस्स ॥५३॥**
अन्वयार्थ : जो रत्नत्रय से सहित हैं और नित्य ही धर्मोपदेश देने में लवलीन रहते हैं वे यतीश्वरों में भी श्रेष्ठ आत्मा उपाध्याय परमेष्ठी हैं उनको मेरा नमस्कार होवे ।

+ साधु परमेष्ठी का स्वरूप -

**दंसणणाण समगं, मगं मोक्खस्स जो हु चारित्तं
साधयदि णिच्चसुद्धं, साहू सो मुणी णमो तस्स ॥५४॥**
अन्वयार्थ : जो मुनि मोक्ष के मार्ग स्वरूप दर्शन और ज्ञान से सहित नित्य ही शुद्ध ऐसे चारित्र को साधते हैं वे साधु परमेष्ठी हैं, उनको मेरा नमस्कार हो ।

+ निश्चयध्यान का लक्षण -

**जं किंचिवि चिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू
लद्धूणय एयत्तं, तदा हु तं तस्स णिच्चयं झाणं ॥५५॥**
अन्वयार्थ : जब साधु एकाग्रता को प्राप्त होकर जो कुछ भी चिंतन करते हुए इच्छा से रहित हो जाते हैं उसी समय उन साधु का वह ध्यान निश्चय ध्यान कहलाता है ।

+ परमध्यान का लक्षण -

मा चिठ्ठह माजंपह, मा चिंतह विंवि जेण होइ थिरो
अप्पा अप्पम्मि रओ, इणमेव परं हवे झाणं ॥५६॥

अन्वयार्थ : कुछ भी चेष्टा मत करो, मत बोलो और मत विचारो जिससे कि स्थिर होता हुआ आत्मा आत्मा में ही रत हो जाता है और यही उत्कृष्ट ध्यान होता है ।

+ ध्यान का कारण -

तवसुदवदवं चेदा, झाणरह-धुरंधरो हवे जम्हा
तम्हा तत्तियणिरदा, तल्लब्धीए सदा होई ॥५७॥

अन्वयार्थ : जिस हेतु से तप, श्रुत और व्रतों का धारक आत्मा ध्यानरूपी रथ की धुरी को धारण करने वाला हो जाता है, अतः उस ध्यान की प्राप्ति के लिए तप, शास्त्र और व्रत इन तीनों में सदा लीन हो जाओ ।

+ ग्रन्थकर्ता का लघुता प्रकाशन -

दव्वसंगहमिणं मुणिणाहा, दोससंचयचुदा सुदपुण्णा
सोधयंतु तणुसुत्तधरेण, णेमिचंदमुणिणा भणियं जं ॥५८॥

अन्वयार्थ : मुझ अल्पज्ञानी नेमिचंद्र मुनिराज ने जो यह 'द्रव्य-संग्रह' कहा है इसको दोष समूह से रहित और श्रुत में पूर्ण-श्रुत केवली ऐसे मुनियों के नाथ-महामुनि संशोधन करें ।
